Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies,
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2018 = 6.371, www.srjis.com
PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL, MAY-JUNE, 2019, VOL- 6/51

दार्शनिक शिक्षा तथा शिक्षा-दर्शन का संबंध

मनोज कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर (बी.एड.), राठ महाविद्यालय, पैठाणी, पौड़ी गढ़वाल उत्तराखंड

Scholarly Research Journal's is licensed Based on a work at www.srjis.com

दर्शन का शाब्दिक अर्थ – दर्शन अंग्रेजी भाषा के 'फिलोस्फी' शब्द का रूपांतर है। इस शब्द की उत्पति ग्रीक के दो शब्दों 'फिलोस' तथा 'सोफिया' से हुई है। 'फिलोस' का अर्थ है प्रेम अथवा अनुराग और 'सोफिया' का अर्थ है –ज्ञान। इस प्रकार 'फिलोस्फी' अर्थात दर्शन का शाब्दिक अर्थ का ज्ञान अनुराग अथवा ज्ञान का प्रेम है। इस दृष्टि से ज्ञान तथा सत्य की खोज करना तथा उसके वास्तविकता स्वरूप को समझने की कला को दर्शन कहते हैं तथा किसी कार्य करने से पूर्व इस कला को प्रयोग करने वाले व्यक्ति को दार्शनिक की संज्ञा दी जाती है। प्लेटो ने अपनी पुस्तक रिपब्लिक में लिखा है – **" जो व्यक्ति ज्ञान को प्राप्त करने तथा नई-नई बातों को जानने के लिए रूचि प्रकट करता है तथा जो कभी संतुष्ट नहीं होता, उसे दार्शनिक कहा जाता है।"**

विशिष्ट तथा अधिक प्रत्यक्ष रूप में दर्शन का अर्थ अमूर्त चिन्तन करने के उस प्रयास से है जिसके द्वारा आत्मा, ईश्वर, प्रकृति तथा सम्पूर्ण जीवन का रहस्य उद्घाटन किया जाता है। इस दृष्टि से मनुष्य क्या है ? जीवन क्या है ? वास्तविकता जीवन का उदेश्य क्या है ? इस संसार की प्रकृति क्या है ? सूर्य, चन्द्रमा , तथा नक्षत्र आदि का उद्गम स्थान कौन सा है ? व्यक्ति इस संसार में क्यों आया है ? ईश्वर का स्वरुप क्या है ? मृत्यु क्या है ? क्या मानव जीवन तथा प्रकृति से परे कोई और लोक है ? तथा के मृत्यु के पश्चात कोई और जन्म होगा ? इस प्रकार की बातों की खोज करके उस चिरन्तन सत्य का उदघाटन करना दर्शन का मुख्य विषय है। दूसरे शब्दों में, उक्त प्रश्नों के अध्ययन को ही दर्शन कहते हैं। चूँकि ये सभी बातें अत्यंत गूढ़ है, इसीलिए इनके विषय में चिन्तन तथा मनन करना एवं सत्य के वास्तविकता स्वरूप को समझना साधारण अथवा सामान्य बुद्धि वाले व्यक्तियों की सामर्थ्य से परे की बात है। यह कार्य महान व्यक्तियों का है। हैंडरसन तथा उसके साथियों ने दर्शन का विशिष्ट रूप में अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है – **"दर्शन ऐसी सबसे जटिल समस्याओं का कठिन, अनुशासित तथा सावधानी के साथ किया हुआ विश्लेषण है जिनका मानव ने कभी अनुभव किया हो।"**

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

व्यापक रूप में दार्शनिकों का कोई भिन्न वर्ग नहीं होता है। वे सभी व्यक्ति दार्शनिक है जो सत्य की किसी न किसी रूप में खोज करते रहते हैं। यदि ध्यान से देखा जाये तो पता चलेगा की प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन की लम्बी यात्रा में जन्म से लेकर मृत्यु तक दिन-प्रतिदिन अनके नये- नये अनुभव होते रहते हैं। इन अनुभवों के आधार पर उसे नवीनतम ज्ञान की प्राप्ति होती है। यही नहीं, उसे हर समय यह जानने की इच्छा बनी रहती है कि अच्छे अथवा बुरे, उचित अथवा अनुचित सच्चे अथवा झूठ, सुन्दर अथवा भौंडे तथा न्याय अथवा अन्याय में क्या भेद है ? जैसे-जैसे किसी व्यक्ति को नये-नये अनुभव होते जाते हैं वैसे-वैसे उसके मस्तिष्क में क्यों ? तथा कैसे ? आदि प्रश्न उठते रहते हैं। परिणामस्वरूप वह सत्य की खोज करने के लिए अपनी समस्त मानसिक शक्तियों को जुटा देता है। इस प्रकार हम देखते है कि प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में सदैव सत्य की खोज करता रहता है। चूँकि सत्य की खोज करना ही दर्शन है, इसलिए व्यापक दृष्टिकोण से शापन हावर के शब्दों में –**"संसार का प्रत्येक व्यक्ति जन्मजात दार्शनिक है।"**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि संसार का प्रत्येक व्यक्ति दार्शनिक के रूप में सत्य की खोज करने को उत्सुक होता है। इसीलिए वह प्रत्येक वस्तु के वास्तविक स्वरुप को ठीक-ठीक समझने में सफल भी हो जाता है। सत्य की खोज करके तथा उसके वास्तविक स्वरुप को समझकर प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह विद्वान् हो अथवा मूढ़, अपनी-अपनी विचारधारायें तथा सिधान्त बना लेता है एवं जीवन के कुछ आदर्शों और मूल्यों में विश्वास करने लगता है। हक्सले का भी यही मत है – **" मनुष्य अपने जीवन दर्शन तथा संसार की विषय में अपनी-अपनी धारणायें के अनुसार जीवन व्यतीत करते हैं। यह बात अधिक से अधिक विचारहीन व्यक्तियों के विषय में भी सत्य है। बिना दर्शन के जीवन को व्यतीत करना असंभव है।"**

दर्शन के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित परिभाषायें दी जा रही है –

(1) आर० द्ब्लु० सेलर्स- "दर्शन उस निरन्तर प्रयास को कहते हैं, जिसके द्वारा हम अपनी और संसार की प्रकृति के सम्बन्ध में क्रमबद्ध ज्ञान द्वारा एक सूक्ष्म दृष्टि प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। "

(2) ब्लेंद रसल- "अन्य क्रियाओं के समान दर्शन का मुख्य उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति है।"

दर्शन का जन्म अनुभव तथा परिस्थिति के अनुसार होता है। यही नहीं, इसका विज्ञान के साथ भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। निम्नलिखित पंक्तियों में हम दर्शन की इन दोनों विशेषतायें पर प्रकास डाल रहे है–

(1) अनुभवों तथा परिस्थितियों के अनुसार दर्शन – दर्शन की पहली विशेषता यह है कि इसका जन्म अनुभव तथा परिस्थिति के अनुसार होता है। यही कारण है कि संसार के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने समय-

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

समय पर अपने-अपने अनुभवों तथा परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवन दर्शन का अपनाया। उन्होंने अपने-अपने दर्शन में केवल सैधांतिक रूप से ही विश्वास नहीं किया अपितु उसको कार्य रूप में परिणत भी किया तथा उसको लिखित अथवा भाषित रूप में दूसरे लोगों तक पहुँचाने के लिए अथक प्रयास किये। उदहारण के लिए महात्मा बुद्ध ने मानवीय कष्टों को समाप्त करने के लिए कुछ साधनों की खोज की। अत: उन्होंने मोक्ष अथवा मुक्ति के दर्शन का प्रचार किया। मौहमद तथा ईसा ने धार्मिक जीवन व्यतीत किया। अत: उन्होंने इस बात का प्रचार किया कि उनके अनुयायी उन पर विश्वास करें। हिटलर साहस तथा बहादुरी का पुजारी था। अत: उसने युधाकारी दर्शन का प्रचार किया। उमरखैयाम का विश्वास ठ की यह संसार नाशवान है। इस दृष्टि से यहाँ पर रहते हुए जितना भी आनन्द उड़ा लिया जाये उतना ही थोडा है। इस विश्वास के आधार पर उसने मदिरा तथा स्रियों को महत्वपूर्ण स्थान देते हुए भौतिकवादी दर्शन का प्रचार किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि दर्शन का जन्म मानव के अनुभवों तथा परिस्थितियों के अनुसार होता है।

(2) दर्शन तथा विज्ञान – दर्शन की दूसरी विशेषता यह है कि इसका विज्ञान से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। विज्ञानं हमें वास्तविकता से परिचित करता है। अत: विभिन्न विज्ञानों द्वारा प्रस्तुत की हुई वास्तविकतायें, जिनका सम्बन्ध बालक की प्रकृति तथा वातावरण से है, दर्शन की अपरिपक्व सामग्री है। यदि जीवन की वास्तविकताओं का ज्ञान नहीं होगा तो दर्शन के लिए सत्य की खोज करना कठिन हो जायेगा। इस दृष्टि से प्रत्येक शिक्षक को विज्ञान तथा दर्शन दोनों का अध्ययन करना परम आवशयक है। इस सम्बन्ध में यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि विज्ञान द्वारा पस्तुत की हुई वास्तविकतायें तथा स्वीकृत बातें जिनसे अन्य बातों का अनुमान किया जा सकता है, केवल आधार है तथा दर्शन के द्वारा निर्धारित किये हुए मूल्य एवं आदर्श शिक्षा के लक्ष्य हैं।

दर्शन की उपर्युक्त विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए इस निष्कर्ष पर आते हैं कि सत्य तथा वातावरण में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। हम जिस प्रकार के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक वातावरण में रहेंगे उसी के अनुसार हम सत्य के रूप को स्वीकार करते रहेंगे तथा अन्य व्यक्तियों को अपने विचारों और विश्वासों से प्रभावित करने के लिए भिन्न-भिन्न रीतियों का सहारा लेते रहेंगे। यही है शिक्षा की पृष्ट भूमि|

शिक्षा जड़ नहीं अपितु एक चेतन तथा स्वेच्छित द्विमुखी प्रक्रिया है। इस दृष्टि से शिक्षा के लिए दो व्यक्तियों का होना परम आवश्यक है – एक शिक्षक और दूसरा बालक। शिक्षक के कुछ आदर्श, मूल्य तथा विश्वास होते हैं और बालक इन सबसे प्रभावित होता है। दूसरे शब्दों में, शिक्षक एक दार्शनिक है जो अपने दर्शन के अनुसार बालक के जीवन के विभिन्न पक्षों को विकसित करके वांछित लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है। इस प्रकार शिक्षा का प्रत्यक्ष साधन है जिसके द्वारा दर्शन के निर्धारित किये गये लक्ष्यों

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

को प्राप्त किया जाता है। एडम्स ने ठीक ही लिखा है – **" शिक्षक दर्शन का क्रियाशील पक्ष है। यही दार्शनिक चिन्तन का एक सक्रिय पहलू है।"**

दर्शन तथा शिक्षा की अलग-अलग व्याख्या करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों का लक्ष्य व्यक्ति को सत्य का ज्ञान कराना तथा उसके जीवन को विकसित करना है। ऐसी दशा में यह कहना उचित ही होगा कि दर्शन तथा शिक्षा का घनिष्ठ सम्बन्ध ही नहीं है अपितु दोनों एक-दूसरे पर आश्रित भी हैं। निम्नलिखित पंकियों में हम दर्शन तथा शिक्षा के सम्बन्ध को स्पष्ट करने के लिए उन तथ्यों पर प्रकाश डाल रहें हिं जिनके कारण शिक्षा दर्शन पर आश्रित रहती है तथा दर्शन को शिक्षा का सहारा लेना पड़ता है।

(1) दर्शन जीवन के उस वास्तविक लक्ष्य को निर्धारित करता है जिसे शिक्षा को प्राप्त करना है – शिक्षा एक चेतन तथा स्वेच्छित ऐसी प्रक्रिया है जिसको उचित रूप से संचालित करने के लिए उचित मार्गदर्शन के शिक्षा अपने लक्ष्य को कदापि प्राप्त नहीं कर सकती। दर्शन जीवन के वास्तविक लक्ष्य को निर्धारित करता है तथा उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा का उचित मार्गदर्शन भी करता है। बिना दर्शन की सहयता के शिक्षा की कोई योजना सतय तथा उपयोगी नहीं हो सकती। अत: स्पेंसर के शब्दों में – " वास्तविक शिक्षा का संचालन वास्तविक दर्शन की कर सकता है।"

(2) दर्शन शिक्षा के विभिन्न अंगो को प्रभावित करता है – कुछ विद्वानों का मत है कि दर्शन का सम्बन्ध केवल सूक्षम बातों से ही है तथा शिक्षा का स्थूल तथा व्यवहारिक से। अत: दर्शन और शिक्षा दोनों अलग-अलग है। इनका आपस में कोई सम्बन्ध नहीं है। दर्शन और शिक्षा को अलग-अलग बताना तथा यह कहना कि इन दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं है, बहुत बढ़ी भूल है। वस्तुस्थिति यह है दर्शन और शिक्षा का इनता घनिष्ठ समबन्ध है कि दोनों को किसी भी हालत में अलग नहीं किया जा सकता। यदि ध्यान से देखा जाये तो पाता चलेगा कि उन विचित्र दार्शनिक विचारधाराओं का ही तो प्रभाव है जिन्होंने समय-समय पर शिक्षा के विभिन्न अंगों को प्रभावित किया है, कर रही है तथा आगे भी करती रहेंगी। जे०एस०रास ने ठीक ही लिखा है –**"दर्शन तथा शिक्षा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं जो एक ही वस्तु के विभिन्न दृष्टिकोण को प्रस्तुत करते हैं वे एक दूसरे पर अंतनिर्हित हैं।"**

(3) महान दार्शनिक महान शिक्षा-शास्त्री भी हुए हैं – इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रत्येक समय के महान दार्शनिक ही महान शिक्षाशास्त्री भी हुए हैं। प्लेटो, सुकरात, लॉक , कमेनियस, रूसो, फ्रेब्रिल, डीवी , गाँधी, टैगोर, तथा अरविन्द घोष आदि महान दार्शनिक के उदहारण इस बात की पुष्टि के लिए प्रस्तुत किए जा सकते हैं। ये सब महान दार्शनिक महान शिक्षाशास्त्री भी हुए हैं। इन महान दार्शनिक द्वारा लिखे हुए ग्रन्थ केवल दर्शनशास्त्र की ही महान कृतियाँ नहीं रही अपितु इनका शिक्षा के क्षेत्र में भी विशेष महत्त्व

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

है। उक्त सभी दार्शनिकों ने अपने-अपने दर्शन को क्रियात्मक अथवा व्यवहारिक रूप देने के लिए अन्त में शिक्षा का ही सहारा लिया।

(1) शिक्षा दर्शन का गत्यात्मक साधन है – किसी कार्य को पूरा करने के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है – (1) विचार अथवा योजना, तथा (2) प्रयोग अथवा व्यवहार। दर्शन योजना अथवा विचार पक्ष है तथा शिक्षा, व्यवहार अथवा प्रयोगात्मक पक्ष है। दूसरे शब्दों में, दर्शन जीवन के लक्ष्य को निर्धारित करता है तथा विचार अथवा विश्लेषण करके सिधान्तों का निर्माण करता है। शिक्षा इन सिधान्तों व्यवहार अथवा प्रयोग में लाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा सैधान्तिकता को व्यावहारिकता में बदलती है। चूँकि शिक्षा का कार्य व्यक्ति के जीवन में परिवर्तन लाना है, इसलिए एडम्स के शब्दों में – " शिक्षा दर्शन का गत्यात्मक साधन है।"

(2) **शिक्षा लक्ष्य को प्राप्त करने का एक साधन है** – यदि दर्शन जीवन के लक्ष्य को निर्धारित करता है, तो शिक्षा उस लक्ष्य को प्राप्त करने का एक साधन है। हरबार्ट का भी यह मत है –" जब तक समस्त दार्शनिक समस्याओं को व्यवहारिक रूप नहीं दिया जायेगा तब तक शिक्षा को चैन नहीं आ सकता।" उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त शिक्षाशास्त्री समय-समय पर दार्शनिकों के सम्मुख प्राय: ऐसी नयी-नयी तथा पेचीदा समस्याओं को सुलझाने के लिए प्रस्तुत करते रहते हैं जो उनको अध्यापन कार्य करते समय खटकती रहती है। इस प्रकार शिक्षा नये दर्शन को जन्म देती है। संक्षेप में, दर्शन तथा शिक्षा का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अब हम निम्नलिखित पंक्तियों में इस बात पर प्रकाश डाल रहे हैं कि दर्शन का शिक्षा का उदेश्यों, पाठ्यक्रमों, शिक्षण-विधियों, अनुशासन तथा पाठ्य-पुस्तकों आदि विभिन्न अंगों पर क्या प्रभाव पड़ता है।

(अ) शिक्षा के उदेश्यों का वर्णन द्वारा निर्माण- शिक्षा का कोइ न कोई उदेश्य अवश्य होता है। इसीलिए शिक्षा को एक सोदेशय प्रक्रिया कहा गया है। ध्यान देने की बात है कि शिक्षा का प्रत्येक उदेश्य जीवन के उदेश्य पर आधारित होता है और जीवन का उदेश्य अपने समय के दर्शन से प्रभावित होता है। अत: शिक्षा के उदेश्य का निर्माण जीवन के उदेश्य अथवा जीवन के दर्शन के अनुसार किया जाता है। जीवन के उदेश्य को निर्धारित करना दार्शनिक है वही शिक्षा का भी उदेश्य बन जाता है। अत: भिन्न-भिन्न दार्शनिक अपनी-अपनी विचारधाराओं अथवा देश की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर जीवन के उदेश्यों अथवा लक्ष्यों को निर्धारित करते रहते हैं। जैसे-जैसे जीवन के उदेश्यों में परिवर्तन होता जाता है वैसे-वैसे शिक्षा के उद्देश्य भी बदल जाते हैं। इस दृष्टि से यह कहना कि किसी अमुक समय में शिक्षा के क्या उदेश्य होंगे यह बात उस समय जीवन के उदेश्यों पर निर्भर करती है।

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

(आ) यूरोप तथा भारत में शिक्षा के उदेश्यों का निर्माण – यूरोप तथा भारत में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग तक की शिक्षा के उदेश्यों के उदाहरणों पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दर्शन का शिक्षा के उदेश्यों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। निम्न पंक्तियों में हम इसी सम्बन्ध में प्रकाश डाल रहे हैं –

(1) प्राचीन युग – सबसे पहले प्राचीन स्पार्टा का उदहारण लीजिये। स्पार्टा पर शत्रुओं का आक्रमणकारियों से टक्कर लेने के लिए राज्य को शक्तिशाली योधाओं की आवश्यकता बनी रहती थी। अत: प्राचीन स्पार्टा के जीवन का उदेश्य अथवा जीवन दर्शन यही बन गया था कि जीवन एक संघर्ष है। जीवन के उदेश्य से प्रभावित होकर वहाँ की शिक्षा का उदेश्य बालकों में देश-प्रेम , उत्साह , साहस तथा आज्ञा पलान की भावना विकसित करना एवं उनमे शारीरिक शक्ति हो उत्पन्न करके ऐसे बलवान योधाओं का निर्माण करना था जो युद्ध कला में निपुण हो। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बालकों को दौड़ना, कूदना, कुश्ती लड़ना , गोला फेंकना तथा मुक्केबाजी आदि बातों पर बल दिया जाता था जिससे उनके शारीर मजबूत बज जाये। स्पार्टा के पश्चात रोम, एथेन्स तथा भारत के उदहारण लीजिए। रोम के निवासी आने जीवन में अधिकारों तथा कर्तव्यों पर अधिक बल देते थे|

अत: रोम की शिक्षा का उदेश्य इसी लक्ष्य को दृष्टि में रखते हुए निर्धारित किया गया था। एथेन्स में लोगों के जीवन का उद्देश्य व्यक्ति के शारीरिक सौंदर्य, चारित्रिक गुण तथा सौन्दर्य अनुभूति की वृधि करना था। अत: वहाँ की शिक्षा का उदेश्य चरित्रवान तथा गुणवान नागरिकों का निर्माण करना था जिससे वे सुन्दरता का दर्शन कर के जीवन के आनन्द पूर्वक व्यतीत कर सके। इसलिए वहाँ की शिक्षा प्रणाली में बालकों के व्यक्तित्व को अधिक महत्त्व देते हुए उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की जाती थी जिससे उनमें स्वास्थ्य तथा शारीरिक सौंदर्य के साथ-साथ चरित्र तथा सौंदर्य भावना विकसित हो जाये। इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन के उदेश्यों अथवा लक्ष्यों के बदल जाने से एथेन्स की शिक्षा के उदेश्य रोम तथा स्पार्टा की शिक्षा के उदेश्य से भिन्न थी। प्राचीन काल में चारों ओर धर्म का बोलबाला था। उस समय जीवन का उद्देश्य आत्मशक्ति का विकास करना, अध्यात्मिक विकास करना तथा ईश्वर को पहचनना था जिससे आवागमन के चक्कर से बच कर व्यक्ति मोक्ष प्राप्त कर सके। अत: उस युग में शिक्षा की व्यवस्था इसी उदेश्य के अनुसार की गई थी।

(2) मध्य युग – मध्य युग के जीवन दर्शन में अनेक उतर-चढाव आये। इससे जीवन के लक्ष्य बदल गए जिसके परिणामस्वरुप शिक्षा के उदेश्य भी बदल गए। उस समय चारों ओर ईसाई धर्म का प्रचार हो रहा था। इससे शिक्षा में भी धर्म का समावेश हो गया। दूसरे शब्दों में, जीवन के उदेश्यों के बदलने के साथ-साथ शिक्षा के उदेश्यों पर भी धर्म की छाप लग गई। परिणामस्वरूप बालकों में आत्मसंयम की भावना

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

विस्किित करना, उनके शरीरी को यातनायें देना तथा बाइबल के उप्देश्यों को बिना सोचे विचारे स्वीकार करना शिक्षा के उदेश्य बन गए। शैने:-शैने: मार्टिन लूथर ने अपने प्रभावशाली भाषणों के द्वारा जनता के सामने यह सिद्ध कर दिखाया प्रचलित कैथोलिक धर्म में विकास करना ठीक नहीं। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप लोगों के जीवन का उदेश्य फिर बदल गया जिससे शिक्षा में भी अन्धविश्वास का भी अन्त हो गया। इधर मध्य युग के भारत में लोगों के जीवन दर्शन में धर्म की छाप प्राचीन युग की भांति लगी रही। परिणामस्वरूप मुस्लिम काल में शिक्षा को जीवन के अधिक निकट लेन के लिए शिक्षा के प्रमुख उदेश्य थे –

(1) शिक्षा द्वारा अधिक से अधिक ज्ञान की प्राप्ति करना।

(2) शिक्षा द्वारा भारत में इस्लाम धर्म का प्रचार करना।

(3) भारतीय मुसलमानों को इस्लाम धर्म के प्रति अपार श्रधा पैदा करना।

(4) दरबारों में उच्च पदों को प्राप्त करना और जीवन का आनन्द लेना आदि-आदि।

(3) आधुनिक युग – आधुनिक युग में लोगों का जीवन दर्शन फिर बदल गया। परिणामस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र में भी क्रन्तिकारी परिवर्तन होने लगे। जॉन व लॉक रूसो जैसे दार्शनिक ने पुरानी विचारधाराओं को घोर विरोध किया और इस बात पर बल दिया कि बालक के व्यक्तित्व की उपेक्षा न करके उसकी मूल प्रवृतियों को स्वतंत्रतापूर्वक विकसित होने के अधिक से अधिक अवसर प्रदान किये जाये। इससे शिक्षा में मनोवैज्ञानिक प्रगति का जन्म हुआ। जैसे-जैसे शिक्षा में इस प्रवृति का विकास होता गया वैसे-वैसे शिक्षा बालक प्रधान होती चली गयी। समय परिवर्तन के साथ-साथ जीवन के उदेश्यों में फिर परिवर्तन आया। ज्यों ही औधोगिक क्रांति आरम्भ हुई शिक्षा भी इसके प्रभाव से अछूती न रह सकी। व्यवसायिक क्रांति के होते ही लोगों का जीवन दर्शन बदल गया। परिणामस्वरूप शिक्षा का उदेश्य हो गया की व्यक्ति को किसी व्यवसाय के लिए तैयार किया जाना चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है की आधुनिक युग में लगभग सभी राष्ट्र अपनी-अपनी विचारधाराओं तथा आवश्यकताओं के अनुसार अपने-अपने जीवन के लक्ष्यों को दृष्टि में रखते हुए अपने-अपने यहाँ की शिक्षा के उदेश्यों का निर्माण कर रहें हैं।

जिन देशों में जनतंत्र की भावना प्रबल है वहाँ की शिक्षा के उद्देश्य जनतंत्रीय सिधान्तों व मूल्यों पर आधारित होते हैं। ऐसी ही जिन देशों में समाजवाद फैला है वहाँ शिक्षा के उदेश्यों का निर्माण साम्यवादी विचारधाराओं के अनुसार किया जाता है। इंग्लैंड तथा अमरीका में जनतंत्र फैला हुआ है। अत: इंग्लैंड में जनतंत्रीय भावना के अनुसरे व्यक्ति के विकास में बल दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, वहाँ की शिक्षा का उदेश्य बालक के व्यक्तित्व का विकास करना है। अमरीका में प्रयोजनवादी विचारधारा से प्रभावित होते हुए शिक्षा में व्यवहारिकता तथा उपयोगिता पर बल दिया जाता है जिससे बालक समाज का एक उपयोगी

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

अंग बन जाये। इसके विपरीत रूस तथा चीन जैसे साम्यवादी देशों में शिक्षा का उद्देश्य बालक को राज्य के लिए तैयार करना है। अंग्रेजी शासन काल में भारत को ऐसे लोगों को शासन के कार्य में सहयोग प्रदान कर सकें। अत: शिक्षा का उदेश्य केवल दफ्तरों में काम करने वाले बाबुओं का निर्माण करना रह गया। सन 15 अगस्त 1947 ई० को भारत अंग्रेजी नियंत्रण से मुक्त हुआ। अब हमारा लक्ष्य समाजवादी ढंग से जनहितकारी राज्य स्थापित करना है। अत: बदलते हुए जीवन दर्शन तथा देश की बदलती हुई आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अब हमारी शिक्षा का उदेश्य उत्तम नागरिकों का निर्माण करना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भिन्न-भिन्न देशों तथा भिन्न-भिन्न कालों में शिक्षा के उदेश्य भिन्न-भिन्न विचारधाराओं के अनुसार सदैव ही बदलते रहे।

पाठ्यक्रम के द्वारा किसी अमुक तथा सामान्य एवं सन्तुलित विचारधारा के अनुसार जीवन के लक्ष्य प्राप्त करने के लिए लोगों को विचार को परिवर्तित किया जाता है। अत: शिक्षा के उद्देश्य की भांति पाठ्यक्रम का निर्माण भी दर्शन के अनुसार ही होता है। जिस देश में जिस समय जैसी विचारधारायें, आकांक्षायें तथा मान्यतायें एवं आदर्श प्रचलित होते हैं, उन्ही के अनुसार उस देश की पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है तथा उसके अन्तर्गत उन्हीं विषयों को सम्मिलित किया जाता है। जिनके अध्ययन करने से उस देश तथा समाज की तत्कालीन आवश्यकतायें पूरी हो जायें। किस विचारधारा के अनुसार पाठ्यक्रम में कौन-कौन विषय को सम्मिलित किया जाये इसके चर्चा अगले अध्याय में करेंगे। दर्शन तथा शिक्षा-पद्धितियां में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। यही कारण है कि समय-समय पर बदलती हुई दार्शनिक विचारधाराओं के अनुसार शिक्षा-पद्धितियां में भी परिवर्तन होता रहता है। वास्तविकता यह है कि किसी उदेश्य को प्राप्त करने के लिए जिस प्रणाली अथवा शिक्षा-पद्धिति का प्रयोग किया जाता है वह दर्शन से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकती। ऐसी दशा में शिक्षा-पद्धिति एक ऐसी व्यवहारिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा जीवन के लक्ष्य तथा शिक्षा के उदेश्य को प्राप्त किया जा सकता है। इस दृष्टि से प्रत्येक शिक्षक को अपने व्यवसाय में यदि सफलता प्राप्त करनी है तो उसे भिन्न-भिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का गहन अध्ययन करना चाहिये जिससे वह बालक तथा पाठ्यक्रम के बीच सम्बन्ध स्थापित करके ऐसी पद्धति हो अपनाने में सफल हो जाये जिसके प्रयोग से जीवन अथवा शिक्षा के उदेश्य प्राप्त हो सके। बालक तथा पाठ्यक्रम के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए किसी उपयुक्त पद्धति को अपनाने से पूर्व प्रत्येक शिक्षक के मस्तिष्क में शिक्षा का कार्य आरम्भ करते हुए अनके प्रश्न उठते हैं। उदाहरण के लिए क्या पाठ्यक्रम अधिक महत्वपूर्ण है अथवा बालक ? यदि पाठ्यक्रम की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है तो क्या उसको पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिये अथवा उसके रुचियों तथा क्रियाओं पर नियंत्रण होना चाहिये ? तथा क्या पाठ्यक्रम को प्रस्तुत करते समय बालकों का सहयोग प्राप्त करना चाहिये अथवा इसे उनकी मस्तिष्क में बल पूर्वक

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

ठूंस देना चाहिये ? इस प्रकार के सभी प्रश्नों के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न दार्शनिकों के अलग-अलग मत है। अत: प्रत्येक दार्शनिक विचारधारा के अनुसार शिक्षण की पद्धतियाँ अलग-अलग ही हैं। प्रकृतिवादी विचार धारा के अनुसार पठ्यक्रम की अपेक्षा बालक को अधिक महत्त्व दिया जाता है। दूसरे शब्दों में, बालक वैक्तिकता, रूचि , स्वाभाव तथा स्वतंत्रता प्रकृतिवाद की कुंजी है। इस विचारधारा के अनुयायियों का अटल विश्वास है कि बालक के सम्मुख पाठ्यक्रम को प्रस्तुत करते समय स्वतंत्र वातावरण प्रस्तुत किया जाये तथा ऐसी शिक्षा पद्धितियों को अपनाया जाया जिनके प्रयोग से बालक का स्वाभाविक विकास हो सके तथा वह केवल पुस्तकों के चक्कर में पड़ते हुए प्रकृति की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों से ज्ञान को स्वयं ही अर्जित कर सके। ऐसे ही प्रयोजनवादीयों योजना विधि का प्रतिपादन करते हुए बालक के विकास को मुख्य स्थान दिया है। आदर्शवादियों ने भी अपनी शिक्षण-पद्धति में प्रश्नोत्तर तथा वाद-विवाद एवं व्याख्यान पद्धतियों को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। चूँकि उक्त विभिन्न विचारधाराओं ने भिन्न-भिन्न शिक्षण-पद्धतियों को प्रतिपादित किया है, इसलिए यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि दर्शन तथा शिक्षण-पद्धतियों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

दर्शन, अनुशासन के स्वरुप को निश्चित करता है। दूसरे शब्दों में, अनुस्शासन पर दार्शनिक विचारधाराओं का गहरा प्रभाव पड़ता है। वस्तुस्थिति यह है कि स्कूली अनुशासन कठोर नियंत्रण पर आधारित होना चाहिये अथवा पूर्ण स्वतंत्रता पर, यह एक दार्शनिक समस्या ही है। यदि हम किसी देश तथा काल की सामाजिक, दार्शनिक तथा तत्कालीन राजनीतिक विचारधाराओं और स्कूल के अनुशासन का अध्ययन करें तो पता चलेगा कि स्कूल का अनुशासन उस समय की विचारधाराओं के अनुरूप ही होता है। उदहारण की लिए प्राचीन स्पार्टा में स्पार्टनों के जीवन का उदेश्य अपने राष्ट्र को शत्रुओं के आक्रमणों से बचाना था। अत: इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए वहाँ के स्कूलों में सैनिक अनुशासन की व्यवस्था की गई। इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि अनुशासन देश की विचारधाराओं में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। एडम्स ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "माडर्न डेवलेपमेंट इन एजुकेशनल प्रैक्टिस" में अनुशासन के निम्नलिखित तीन रूपों पर प्रकाश डाला है –

(1) **दमनात्मक अनुशासन** - दमनात्मक अनुशासन दमनवादी विचारधारा पर आधारित है तथा स्वेच्छाचारी शासन की ओर संकेत करता है। इस विचारधारा के अनुसार ब्लाक को किसी प्रकार की स्वतंत्रता प्रदान नहीं की जाती अपितु उसे दबाकर बलपूर्वक नियंत्रण में रखे जाने पर बल दिया जाता है। इस दृष्टि से दमनात्मक अनुशासन मारपीट तथा भय पर आधारित होता है।

(2) **प्रभावात्मक अनुशासन**- प्रभावात्मक अनुशासन आदर्शवादी दर्शन पर आधारति है इस विचारधारा के समर्थकों का विश्वास है कि बालक के व्यवहार में शिक्षक के व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पड़ता है। अत:

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

शिक्षक को चाहिये कि वह अपने व्यक्तित्व तथा आदर्शों के द्वारा बालक को इस प्रकार से प्रभावित करे कि आत्म-अनुशासन विकसित हो जायें। इस प्रकार प्रभाववादी दमनकारियों की भांति बालक को सुधारने के लिए डंडे अथवा मारपीट एवं भय का प्रयोग न करके उसके हृदय को प्रेम से जीत कर पूर्ण अनुशासन को बनाये रखने का समर्थन करते हैं।

(3) **मुक्तयात्मक अनुशासन**- मुक्तयात्मक अनुशासन प्रकृतिवादी दर्शन पर आधारित है। इस दर्शन के अनुसार बालक की स्वाभाविक अच्छाई में विश्वास किया जाता है। अत: मुक्तिवादियों का विश्वास है कि यदि बालक को उसके विकास के लिए पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान कर दी जाये तो उसके जीवन में नैतिकता की सुन्दरता इस प्रकार से प्रस्फुटित हो उठेगी जिस प्रकार कसे नाना प्रकार के पुष्पों में स्वाभाविक सौंदर्य फूट पड़ता है। अत: मुक्तवादी, दमनकारियों प्रभाववादी से बिलकुल सहमत न होकर बालक की अनियंत्रित स्वतंत्रतापूर्ण आत्माभिव्यक्ति का समर्थन करते हुए स्वाभाविक परिणामों के अनुशासन का समर्थन करते हैं। चूँकि आधुनिक युग में मुक्तिवादी विचारधारा प्रचलित है, इसलिए शिक्षा में "अनुशासन तथा स्वतंत्रता की चर्चा प्रत्येक स्थान पर सुनाई पड़ती है।

जीवन के आदर्शों तथा शिक्षा के उदेश्यों को प्राप्त करने के लिए पाठ्य-पुस्तक एक महत्वपूर्ण साधन होता है। अत: पाठ्य-पुस्तक का देश की प्रचलित दार्शनिक विचारधाराओं, सिधान्तों, आदर्शों तथा भावनाओं को ध्यान में रखते हुए लिखा जाता है तो उसके अध्ययन से बालकों में जीवन के आदर्शों को प्राप्त करने की उत्सुकता बढ़ती है तथा उसमें वांछनीय भावनाओं का विकास होता है। ऐसी दशा में यदि पाठ्य-पुस्तक की विषय-वस्तु देश के आदर्शों तथा आवश्यकताओं की पूर्ति करती है तो उस पुस्तक का सम्पूर्ण देश में आदर तथा सत्कार होता है, अन्यथा उसका बहिष्कार कर दिया जाता है। अत: हमें चाहिये कि हम उन्हीं पाठ्य-पुस्तक का चयन करें जिनमें आधुनिक जीवन के आदर्शों तथा भावनाओं की झलक दिखाई देती हो।

दर्शन का शिक्षक के व्यक्तितिव तथा उसके व्यवहार से घनिष्ठ समबन्ध होता है। यदि ध्यान से देखा जाये तो पता चलेगा कि शिक्षक ही नहीं होता अपितु वह स्वयं एक दार्शनिक भी होता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक शिक्षक का अपने जीवन के प्रति एक उदेश्य होता है। उसके कुछ आदर्श मूल्य तथा धारणायें होती है जिनकी महानता से उसे अटल विश्वास होता है। शिस्खा प्रक्दन करते समय वह बार-बार उन आदर्शों तथा म्ल्यों पर प्रकाश डालता है जिससे कक्षा के बालकों को उनकी महानता में विश्वास को जाये तथा वे उनको प्राप्त करने के लिए तत्पर हो जायें। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि प्रत्येक शिक्षक एक दर्शानिक होता है जो अपने दर्शन से कक्षा के बालकों को पग-पग पर प्रभावित करता रहता है। चूँकि शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक का महत्वपूर्ण स्थान है, इसलिए उसकी दार्शनिक विचारधारा का प्रभाव शिक्षा के

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

विभिन्न अंगों पर अवश्य पड़ता है। दूसरे शब्दों में, शिक्षक के विचारों तथा देश की आवश्यकताओं में अनुरूपता का होना परम आवश्यक है। तब ही देश तथा उसके भावी नागरिकों की उन्नति सम्भव हो सकती है। ऐसी स्थिति में प्रत्येक शिक्षक को चाहिये कि वह अपनी शैक्षिक योग्यता में वृधि करता रहे जिससे उसको प्रकृति, जीवन तथा ईश्वर का ज्ञान हो जाये और उसमें अनके समाजाजिक तथा नैतित्क गुणों का विकास हो जाये। इन गुणों के विकसति हो जाने से उसका चरित्र निखर जायेगा तथा उसका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली बन जायेगा कि उसके सम्पर्क में आकर बालकों के व्यक्तितिव का वांछनीय विकास होना निश्चित है। शिक्षक को यह भी चाहिये कि विभिन्न विचारधाराओं का गहन अध्ययन करता रहे तथा अपनी आलोचनात्मक, तार्किक तथा अन्वेषणनात्मक शक्ति के द्वारा इनमें से देश तथा काल की आवशयकताओं के अनुसार उपयुक्त विचारों का चयन करे तथा उनके अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया संचालित करता रहे। जिस शिक्षक के जीवन का कोई उद्देश्य नहीं होता वह कक्षा के बालकों के सामने किसी आदर्श को पस्तुत नहीं कर सकता। ऐसे आदर्श-विहीन शिक्षक के द्वारा प्रदान की हुई शिक्षा निरथर्क है उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षक स्वयं एक दार्शनिक है तथा उसके द्वारा प्रदान की हुई शिक्षा दर्शन है। अत: हम कह सकते हैं कि दर्शन तथा शिक्षक का घनिष्ठ समबन्ध है। इस अध्याय में हमने दर्शन तथा शिक्षक के समबन्ध पर प्रकाश डालते हुए देखा कि शिक्षा के विभिन्न अंगों का दर्शन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। दूसरे शब्दों में, शिक्षा को मार्ग न दिखाये तो शिक्षा अर्थहीन हो जायेगी। अत: जेंटायिल के शब्दों में – **" जो व्यक्ति इस बात में विश्वास रखते हैं कि दर्शन से सम्बन्ध बनाये बिना शिक्षा की प्रक्रिया उत्तम रीति से चल सकती है, वे शिक्षा के विशुद्ध स्वरुप को समझने में असमर्थता प्रकट करते हैं शिक्षा की प्रक्रिया दर्शन की सहायता के बिना उचित मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकती।**

सन्दर्भ सूची-

अग्निहोत्री, रविन्द्र (2008):आधुनिक भारतीय शिक्षा, समस्याएँ और समाधान, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,जयपुर ।

अग्रवाल, जे. सी.(1971): भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ, आर्य बुक डिपो करोल बाग, नई दिल्ली।

उपाध्याय, प्रतिमा(2003): भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवित्तियां,शारदा पुस्तक भवन, इलाहबाद ।

त्यागी, गुरुसरन दास(2007): भारतीय शिक्षा का परिदृश्य,अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा ।

शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत (2007): रमन बिहारी लाल, रस्तोगी पब्लिकेशन, शिवाजी रोड मेरठ ।

शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार (2011): कामता प्रसाद पाण्डेय, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी ।

शिक्षा सिद्धान्त (2008): एन.आर. स्वरूप सक्सेना, आर लाल बुक डिपो मेरठ ।

Copyright © 2019, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies